1960G Introduction to Pramey Ratnmala

Prameyratnmala ka puritan tippan (In Anekant, 1960)

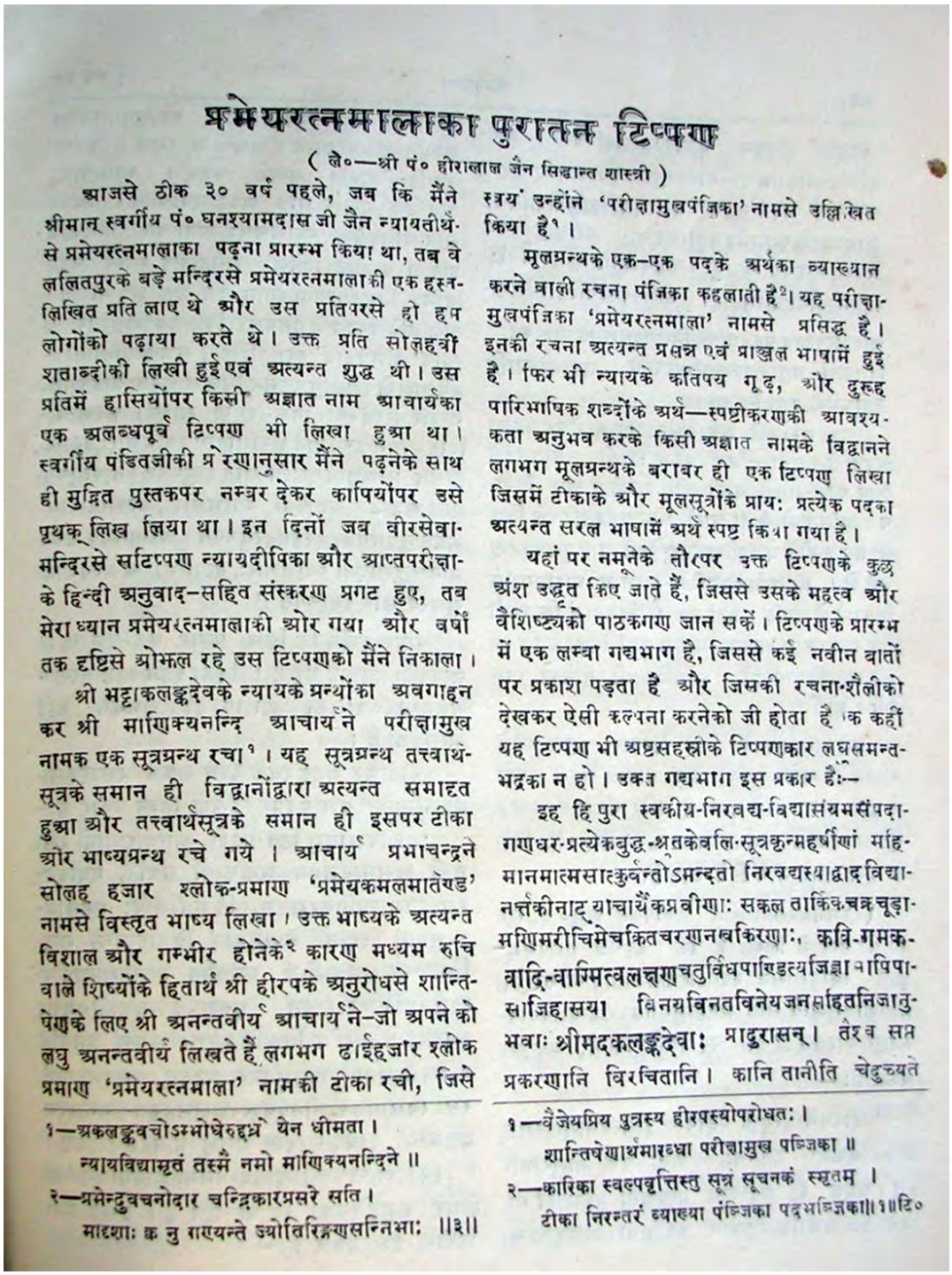

प्रमेयरत्नमालाका पुरातन टिप्पण

(ले०—श्री पं० हीरालाल जैन सिद्धान्त शास्त्री)

आजसे ठीक ३० वर्ष पहले, जब कि मैंने श्रीमान् स्वर्गीय पं० घनश्यामदास जी जैन न्यायतीर्थ से प्रमेयरत्नमालाका पढ़ना प्रारम्भ किया था, तब वे ललितपुरके बड़े मन्दिरसे प्रमेयरत्नमालाकी एक हस्त-लिखित प्रति लाए थे और उस प्रतिपरसे ही हम लोगोंको पढ़ाया करते थे। उक्त प्रति सोलहवीं शताब्दीकी लिखी हुई एवं अत्यन्त शुद्ध थी। उस प्रतिमें हासियोंपर किसी अज्ञात नाम आचार्यका एक अलब्धपूर्व टिप्पण भी लिखा हुआ था। स्वर्गीय पंडितजीकी प्रेरणानुसार मैंने पढ़नेके साथ ही मुद्रित पुस्तकपर नम्बर देकर कापियोंपर उसे पृथक् लिख लिया था। इन दिनों जब वीरसेवा-मन्दिरसे सटिप्पण न्यायदीपिका और आप्तपरीक्षा-के हिन्दी अनुवाद-सहित संस्करण प्रगट हुए, तब मेरा ध्यान प्रमेयरत्नमालाकी ओर गया और वर्षों तक दृष्टिसे ओझल रहे उस टिप्पणको मैंने निकाला।

श्री भट्टाकलङ्कदेवके न्यायके ग्रन्थोंका अवगाहन कर श्री माणिक्यनन्दि आचार्यने परीक्षामुख नामक एक सूत्रग्रन्थ रचा[1]। यह सूत्रग्रन्थ तत्त्वार्थ-सूत्रके समान ही विद्वानोंद्वारा अत्यन्त समादृत हुआ और तत्त्वार्थसूत्रके समान ही इसपर टीका और भाष्यग्रन्थ रचे गये। आचार्य प्रभाचन्द्रने सोलह हजार श्लोक-प्रमाण 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नामसे विस्तृत भाष्य लिखा। उक्त भाष्यके अत्यन्त विशाल और गम्भीर होनेके[2] कारण मध्यम रुचि वाले शिष्योंके हितार्थ श्री हीरपके अनुरोधसे शान्ति-षेणके लिए श्री अनन्तवीर्य आचार्यने-जो अपने को लघु अनन्तवीर्य लिखते हैं लगभग ढाईहजार श्लोक प्रमाण 'प्रमेयरत्नमाला' नामकी टीका रची, जिसे स्वयं उन्होंने 'परीक्षामुखपंजिका' नामसे उल्लिखित किया है[1]।

मूलग्रन्थके एक-एक पदके अर्थका व्याख्यान करने वाली रचना पंजिका कहलाती है[2]। यह परीक्षा-मुखपंजिका 'प्रमेयरत्नमाला' नामसे प्रसिद्ध है। इनकी रचना अत्यन्त प्रसन्न एवं प्राञ्जल भाषामें हुई है। फिर भी न्यायके कतिपय गूढ़, और दुरूह पारिभाषिक शब्दोंके अर्थ—स्पष्टीकरणकी आवश्य-कता अनुभव करके किसी अज्ञात नामके विद्वानने लगभग मूलग्रन्थके बराबर ही एक टिप्पण लिखा जिसमें टीकाके और मूलसूत्रोंके प्रायः प्रत्येक पदका अत्यन्त सरल भाषामें अर्थ स्पष्ट किया गया है।

यहां पर नमूनेके तौरपर उक्त टिप्पणके कुछ अंश उद्धृत किए जाते हैं, जिससे उसके महत्व और वैशिष्ट्यको पाठकगण जान सकें। टिप्पणके प्रारम्भ में एक लम्बा गद्यभाग है, जिससे कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ता है और जिसकी रचना-शैलीको देखकर ऐसी कल्पना करनेको जी होता है कि कहीं यह टिप्पण भी अष्टसहस्रीके टिप्पणकार लघुसमन्त-भद्रका न हो। उक्त गद्यभाग इस प्रकार है:—

इह हि पुरा स्वकीय-निरवद्य-विद्यासंयमसंपदा-गणधर-प्रत्येकबुद्ध-श्रुतकेवलि-सूत्रकृन्महर्षीणां महि-मानमात्मसात्कुर्वन्तोऽमन्दतो निरवद्यस्याद्वाद विद्या-नर्त्तकीनाट्याचार्यैकप्रवीणाः सकल तार्किकचक्रचूड़ा-मणिमरीचिमेचकितचरणनखकिरणाः, कवि-गमक-वादि-वाग्मित्वलक्षणचतुर्विधपाण्डित्यजिह्मापिपा-साजिहासया विनयविनतविनेयजनसहितनिजानु-भवाः श्रीमदकलङ्कदेवाः प्रादुरासन्। तैश्व सप्त प्रकरणानि विरचितानि। कानि तानीति चेदुच्यते

1—अकलङ्कवचोऽम्भोधेरुद्दध्रे येन धीमता।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥

2—प्रमेन्दुवचनोदार चन्द्रिकाप्रसरे सति।
मादृशाः क्व नु गण्यन्ते ज्योतिरिङ्गणसन्निभाः ॥३॥

1—वैजेयप्रिय पुत्रस्य हीरपस्योपरोधतः।
शान्तिषेणार्थमारब्धा परीक्षामुख पञ्जिका ॥

2—कारिका स्वल्पवृत्तिस्तु सूत्रं सूचनकं स्मृतम्।
टीका निरन्तरं व्याख्या पंञ्जिका पदभञ्जिका॥१॥टि०

बृहत्त्रयं लघुत्रय' चूलिकाप्रकरणं चेति । तेषामतिविषमत्वान्मन्दधियामनवगन्तुमशक्यत्वात्तद् बुद्ध्युत्पादनार्थं तदर्थमुद्धृत्य धारानगरीवासनिवासिनः श्रीमन्माणिक्यनन्दिभट्टारकदेवाः परीक्षामुखाख्यं प्रकरणमारचयाम्बभूवुः । तद्विवरीतुमिच्छवःश्रीमल्लघ्वनन्तवीर्यदेवास्तदादौ नास्तिकत्वपरिहार-शिष्टाचारपरिपालन-पुण्यावाप्ति-निष्प्रत्यूहशास्त्रव्युत्पत्त्यादिलक्षणं चतुर्विधफलमभिलषन्तो नतामरेत्यादि श्लोकमेकं रचयन्ति स्म ।

उक्त सन्दर्भसे कई महत्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश पड़ता है । यथा—जिस प्रकार स्वामी समन्तभद्रके लिए कवि, गमक, वादी और वाग्मी ए चार विशेषण प्रसिद्ध थे, वे ही चारों श्रीभट्टाकलङ्कदेवके लिए भी प्रयुक्त होते थे । श्रीअकलङ्कदेवने सात मूलप्रकरण रचे थे । श्री माणिक्यनन्दि आचार्य धारानगरीके निवासी थे आदि । जहां तक मैं जानता हूं कि अभी तक इतना स्पष्ट उल्लेख अन्यत्र नहीं मिला है जिसमें श्री माणिक्यनन्दिके धारानिवासी होनेका स्पष्ट कथन हो ।

प्रमेयरत्नमालाका यह टिप्पण अष्टसहस्रीके समान ही प्रत्येक पदका अर्थ अत्यन्त सरल शब्दों के द्वारा स्पष्ट करने वाला है और ग्रन्थगत अनेक गूढ ग्रन्थियोंके अर्थका प्रकट करने वाला है। जिस के २-१ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

(१) प्रमेयरत्नमालामें 'प्रदीपवत्' समु० १, सूत्र १२ की टीकामें लिखा है कि "इदमत्र तात्पर्यम्—ज्ञानं स्वावभासने स्वातिरिक्तसजातीयार्थान्तरापेक्षं प्रत्यक्षार्थगुणत्वे सति अदृष्टानुयायिकरणत्वात्प्रदीपभासुराकारवत् ।" इस पर जो टिप्पण है, वह इस प्रकार है:—

'प्रदीपवत्' इत्युक्ते प्रदीपस्य द्रव्यत्वेनागुणत्वात् साधनविकलो दृष्टान्तः, अतः उक्तं भासुराकारवत् । यथैव हि प्रदीपस्य प्रत्यक्षतां प्रकाशतां वा विना तत्प्रतिभासिनोऽर्थस्य प्रकाशता प्रत्यक्षता वा नोपपद्यते तथा प्रमाणस्यापि प्रत्यक्षतामन्तरेण तत्प्रतिभासिनोऽर्थस्य प्रत्यक्षता न स्यात् । करणत्वादित्येतावति साधने अदृष्टेन व्यभिचारः, अत उक्तं गुणत्वे सति अदृष्टानुयायीति । तथापि सति सन्निकर्षेण व्यभिचारः, अतः उक्तं प्रत्यक्षार्थे इति । अथोत्तरापेक्षं, इत्येतावति साध्ये घटादिभिः सिद्धसाध्यता स्यात्, तत उक्तं सजातीयेति । तस्मिन्नपि उच्यमाने पुरुषान्तरविज्ञानेन सिद्धसाध्यता स्यात्' तन्निषेधार्थं स्वातिरिक्तं । सजातीयार्थान्तरानपेक्षग्रहणेपरार्थानुभवनेन सिद्धसाधनता प्रतिपद्यते, तत्परिहारार्थं स्वाभावसनग्रहणं साध्यं । करणत्वादिति साधने उच्यमाने कुठारादिना व्यभिचारः,तत्परिहारार्थं प्रत्यक्षार्थगुणत्वे सति इत्युच्यते । तावत्युच्यमाने अदृष्टेन शक्तिना व्यभिचारः, तत्परिहारार्थं अदृष्टानुयायिकरणत्वादित्युच्यते । अस्मिन्नपि उच्यमानेचक्षुरादिना व्यभिचारः, तत्परिहारार्थं प्रत्यक्षार्थगुणत्वे सति इत्युच्यते ।'

पाठक देखेंगे कि किस प्रकार एक-एक पदकी सार्थकता बताई गई है । विना इतने स्पष्टीकरणके मूलग्रन्थकी पंक्तिका आशय ही समझमें नहीं आसकता है ।

(२) तीसरे समुद्देश्यके ६०वे सूत्रके 'रसादेकसामग्र्यनुमानेन' इस पदपर टिप्पण निम्न प्रकार है:—

'अन्धकारावगुंठिते प्रदेशे आस्वाद्यमानो रसो धर्मी स्वसमानसमयकारणकार्यो भवति, एवंविधरसत्वात्साम्प्रतिकरसवत्, इति रूपरसयोः एकसामग्र्यनुमानं इदानीं रूपानुमानं विवादापन्ने मातुलिंगे रससमकालीनं रूपमस्ति एकसामग्र्यधीनत्वात्संप्रतिपन्नरसवत् पूर्वरूपक्षणसजातीयमुत्तर रूपक्षणं जनयन्नेव विजातीयमुत्तररसक्षणं जनयति कारणक्षणत्वात्, अनुभूतरसक्षणवत्, आस्वाद्यमानो रसः स्वसमानकालीनपूर्वरूपक्षणसहकृत-समन्तररसक्षणजन्यः कार्यक्षणत्वात् अनुभूयमानरसक्षणवत् ।'

(३) 'आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः' यह तीसरे समुद्देश्यका ९९ वां सूत्र है । इसके ऊपर टिप्पण इस प्रकार है:—

(४३० वें पृष्ठका शेषांश)

अर्थज्ञानमित्येतावति उच्यमाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः,अत उक्तं वाक्यनिबन्धनमिति वाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमित्युच्यमानेऽपि याद्दच्छिक संवादिषु प्रलंभकसंवादिषु विप्रलंभकवाक्यजनेषु सुप्तोन्मत्तादिवाक्यजनेषु वा नदीतीरे फलसंसर्गादिज्ञानेष्वतिव्याप्तिः, अत उक्तं आप्तेति । आप्तवचननिबन्धनज्ञानमित्युच्यमाने आप्तवाक्यकर्मके श्रावण प्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः,अत उक्तं अर्थेति । अर्थस्तात्पयरूढ़ इति यावत्, तात्पर्यमेव वचसीत्यभियुक्तं वचनात्। तत आप्तवचनादिनिबंधनमर्थज्ञानमित्युक्तमागमलक्षणं निर्दोषमेव।

इस प्रकार सारा टिप्पण मूलग्रंथके सभी कठिन स्थलों और विषम पदोंका सरल शब्दोंसें रहस्योद्‌घाटन एवं अर्थ-स्पष्टीकरण करता है। इस टिप्पणके प्रकाशसें आनेपर न्यायशास्त्रके अध्येताओंको बहुत सुविधा और सहायता प्राप्त होगी।

Book review

प्रमेयरत्नमाला

हिन्दी व्याख्याकार एवं सम्पादक—श्री पं० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर
प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१
सुन्दर सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १५) रुपया।

आचार्य माणिक्यनंदि प्रणीत जैन न्याय के आद्य सूत्र ग्रंथ परीक्षामुख पर लघु अनंतवीर्य ने प्रमेयरत्नमाला नामक लघु टीका की है। इसमें समस्त दर्शनों के विशिष्ट प्रमेयों का विशदरीत्या प्रतिपादन किया गया है। इसका विषय प्रमाण को सिद्ध करने के लिए प्रमाणाभासों का निरसन है। प्रमेयों के बिना प्रमाण का प्रतिपाद्य विषय अपूर्ण ही होगा, अतः प्रमाणाङ्गों का कथन करते समय विभिन्न प्रमेयों का वर्णन आ जाना स्वाभाविक ही है। आचार्य प्रभाचन्द की परीक्षामुख की १२ हजार श्लोक प्रमाण विशाल टीका प्रमेयकमल मार्तण्ड का संक्षिप्तीकरण हो प्रमेयरत्नमाला की विशेषता है। इसमें ६ समुद्देश हैं। प्रथम समुद्देश्य में मंगलाचरण के पश्चात् मीमांसक मत की मान्यता के विरुद्ध प्रमाण अभ्यास दशा में स्वतः और अनभ्यास दशा में परतः सिद्ध किया है। द्वितीय में चार्वाक और मीमांसक मान्यता का निषेधकर सर्वज्ञ सिद्धि करके ईश्वर सृष्टि कर्तृत्व का निराकरण किया है। तृतीय में परोक्ष प्रमाण के भेद, नैयायिक, बौद्धों की मान्यताओं एवं वेद अपौरुषेय है मान्यता का निरसन किया है। चतुर्थ में सृष्टिक्रम की मान्यता को असंभव बतलाकर सामान्य विशेष की परिभाषा, स्वदेह परिमाण आत्मा को अनादि अनंत सिद्ध किया है। पंचम में प्रमाण फल और षष्ठम् में

Sanmati Sandesh

प्रमाणाभास और ७ नयों का स्वरूप प्रतिपादन किया है। हिन्दो अर्थ होने से यह न्याय का ग्रंथ सर्वसुलभ हो गया है। हिन्दी अनुवाद सुन्दर एव सुगम्य है। श्री प्रोफेसर उदयचन्दजो जैन एम. ए. सर्वदर्शनाचार्य की ५० पृष्ठ की प्रस्तावना बड़ी महत्वपूर्ण है एवं न्याय विषय में प्रवेश पाने के लिये मार्गदर्शन कर सकती है।

नय दर्पण

भाग १—२

लेखक—श्री क्षु० जिनेन्द्र वर्णी
प्रकाशक—श्री प्रेमकुमारो जैन स्मारक ग्रन्थमाला सरसेठ स्वरूपचन्द्र जी हुकमचन्द जी दि. जैन पारमार्थिक संस्थाएं जंवरीबाग इंदोर (म० प्र०)
मूल्य दस रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थ में नयों का विवेचन किया गया है। अनेकांत जितना गंभीर एवं जटिल विषय है, उतना ही धर्म ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक भो। क्योंकि स्याद्वाद शैलो को बिना समझे जिनागम में कभी भी प्रवेश नहीं हो सकता। अनेकांत धर्म और आगम का प्राण है। आदरणोय लेखक महोदय ने आगम का गहन मंथन कर नयों पर विस्तृत विवेचना की है। इसमें पक्षपात व एकांत, शब्द व ज्ञान संबंध, वस्तु व ज्ञान संबंध, प्रमाण व नय, सम्यक् व मिथ्याज्ञान, द्रव्य सामान्य, आत्मा व उसके अंग, सप्तभंगी, नय की स्थापना, मुख्य गौण व्यवस्था, शास्त्रीय न्याय सामान्य, सप्तनयों की पद्धति, निश्चय और व्यवहार नय तथा अध्यात्म नय आदि पर अच्छा प्रकाश डाला है। प्रवचनसार में आये हुए ४७ नयों का भी विवेचन किया गया है। नयों को समझाने की विधि आधुनिक उपदेशात्मक ढंग से अपनाई गई है, जिससे विषय सरलता से समझ में आ जाता है। नयों का विशेष ज्ञान कराने के लिए अपने ढंग का यह अनूठा ग्रंथ है। करीब ८०० पृष्ठ होते हुए भी सुन्दर सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १०) कम ही रखा गया है। क्योंकि यह ग्रन्थ श्रीमंत दानवीर सरसेठ हुकमचन्द जी की पुत्रबधु तथा श्रीमान सेठ राजकुमारसिंह जो की धर्मपत्नी सौ. प्रेमकुमारो की स्मृति में प्रकाशित किया गया है।